UP Board Solutions for Class 10 Sanskrit Chapter 3 सूक्ति – सुधा (पद्य – पीयूषम्)

परिचय

प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत कुछ सूक्तियों का संकलन किया गया है। 'सूक्ति' का अर्थ 'सुन्दर कथन है। सूक्तियाँ प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में प्रत्येक मनुष्य के लिए समान रूप से उपयोगी होती हैं। जिस प्रकार सुन्दर वचन बोलने से बोलने वाले और सुनने वाले दोनों का ही हित होता है, उसी प्रकार काव्यों में लिखित सूक्तियाँ आनन्ददायिनी होने के साथ-साथ जीवन में नैतिकता और सामाजिकता भी लाती हैं। ये मनुष्यं को अमृत-तत्त्व की प्राप्ति की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

पाठ-सारांश

प्रस्तुत पाठ में नौ सूक्तियाँ संकलित हैं। उनका संक्षिप्त सार इस प्रकार है

1. संसार की समस्त भाषाओं में देववाणी कही जाने वाली भाषा संस्कृत सर्वश्रेष्ठ है। इसका काव्य सुन्दर है। और इसके सुन्दर एवं मधुर वचन (सूक्तियाँ) तो अद्वितीय हैं।
2. मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को रत्न मानते हैं, जब कि इस पृथ्वी पर रत्न तो अन्न, जल एवं मधुरं वचन हैं।
3. बुद्धिमान् लोग अपना समय ज्ञानार्जन में लगाते हैं, जब कि मूर्ख लोग अपने समय को सोने अथवा निन्दित कार्यों में व्यर्थ गॅवाते हैं।
4. जहाँ सज्जन निवास करते हैं, वहाँ संस्कृत के मधुर श्लोक सर्वत्र आनन्द का प्रसार करते हैं। इसके विपरीत जहाँ दुर्जन निवास करते हैं, वहाँ 'श्लोक' के 'ल' का लोप होकर केवल 'शोक' ही शेष रह जाता है, अर्थात् वहाँ पर आनन्द का अभाव हो जाता है।
5. व्यक्ति को सदैव समयानुसार ही बात करनी चाहिए। समय के विपरीत बात करने पर तो बृहस्पति भी उपहास के पात्र बने थे।
6. श्रद्धा के साथ कही गयी तथा पूछी गयी बात सर्वत्र आदरणीय होती है और बिना श्रद्धा के वह वन में रोने के समान व्यर्थ होती है।
7. विद्या सर्वश्रेष्ठ धन है; क्योंकि यह राजा द्वारा छीनी नहीं जा सकती, भाइयों द्वारा विभाजित नहीं की जा सकती। इसीलिए देवताओं और विद्वानों द्वारा इसकी उपासना की जाती है।
8. याचकों के दु:खों को दूर न करने वाली लक्ष्मी, विष्णु की भक्ति में मन को न लगाने वाली विद्या, विद्वानों में प्रतिष्ठा प्राप्त न करने वाला पुत्र, ये तीनों न होने के बराबर ही हैं।
9. व्यक्ति की शोभा स्नान, सुगन्ध-लेपन एवं आभूषणों से नहीं होती है, वरन् उसकी शोभा तो एकमात्र सुन्दर मधुर वाणी से ही होती है।

पद्यांशों की ससन्दर्भ हिन्दी व्याख्या

(1)
भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती।
तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम् ॥ [2009, 10, 12, 13]

शब्दार्थ भाषासु = भाषाओं में मुख्या = प्रमुख। मधुरा = मधुर गुणों से युक्त। दिव्या = अलौकिक गीर्वाणभारती = देवताओं की वाणी, संस्कृत। तस्मात् = उससे। हि = निश्चयपूर्वका अपि = भी। सुभाषितम् = सुन्दर या उपदेशपरक वचन। सन्दर्भ प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' में संकलित 'सूक्ति-सुधा' शीर्षक पाठ से अवतरित है।

[संकेत इस पाठ के शेष सभी श्लोकों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा। **]**

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में संस्कृत भाषा और सुभाषित की विशेषता बतायी गयी है।

अन्वय भाषासु गीर्वाणभारती मुख्या, मधुरा दिव्या (च अस्ति)। तस्मात् हि काव्यं मधुरम् (अस्ति), तस्मात् अपि सुभाषितम् (मधुरम् अस्ति)।।

व्याख्या विश्व की समस्त भाषाओं में देवताओं की वाणी अर्थात् संस्कृत प्रमुख, मधुर गुण से युक्त और अलौकिक है। इसलिए उसका काव्य भी मधुर है। उससे भी मधुर उसके सुन्दर उपदेशपरक वचन अर्थात् सुभाषित हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृतभाषा सर्वविध गुणों से युक्त है।

(2)
पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढः पाषाण-खण्डेषु रत्न-संज्ञा विधीयते ॥ [2006,07,08,09, 10,12]

शब्दार्थ पृथिव्यां = भूतल पर, पृथ्वी पर त्रीणि रत्नानि = तीन रत्न। सुभाषितम् =अच्छी वाणी। मूढः = मूर्ख लोगों के द्वारा पाषाणखण्डेषु = पत्थर के टुकड़ों में। रत्नसंज्ञा = रत्न का नाम विधीयते = किया जाता है।

प्रसग प्रस्तुत श्लोक में जल, अन्न और सुन्दर वचन को ही वास्तविक रत्न बताया गया है।

अन्वय पृथिव्यां जलम्, अन्नं, सुभाषितम् (इति) त्रीणि रत्नानि (सन्ति)। मूढ: पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।

व्याख्या पृथ्वी पर जल, अन्न और सुन्दर (उपदेशपरक) वचन–ये तीन रत्न अर्थात् श्रेष्ठ पदार्थ हैं। मूर्ख लोगों ने पत्थर के टुकड़ों को रत्न का नाम दे दिया है। तात्पर्य यह है कि जल, अन्न और मधुर वचनों का प्रभाव समस्त संसार के कल्याण के लिए होता है, जब कि रल जिनके पास होते हैं, केवल उन्हीं का कल्याण करते हैं। अत: जल, अन्न और मधुर वचन ही वास्तविक रत्न हैं।

(3) काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यँसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥ [2007,08, 10]

शब्दार्थ काव्यशास्त्रविनोदेन = काव्य और शास्त्रों के अध्ययन द्वारा मनोरंजन से। कालः = समय। गच्छति = बीतता है। धीमताम् = बुद्धिमानों का। व्यसनेन = निन्दनीय कर्मों के करने से। निद्रया = निद्रा द्वारा कलहेन = झगड़ा करने से। वा = अथवा।।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में मूर्खा और बुद्धिमानों के समय बिताने के साधन में अन्तर बताया गया है।

अन्वय धीमतां कालः काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति, मूर्खाणां (कालः) च व्यसनेन, निद्रया कलहेन वा (गच्छति)।

व्याख्या बुद्धिमानों का समय काव्य और शास्त्रों के अध्ययन द्वारा मनोरंजन (आनन्द प्राप्त करने) और पठन-पाठन में व्यतीत होता है। मूर्खा का समय निन्दित कार्यों के करने में, सोने में अथवा झगड़ने में व्यतीत होता है।

https://www.evidyarthi.in/

(4)
श्लोकस्तु श्लोकतां याति यत्र तिष्ठन्ति साधवः।
लकारो लुप्यते यत्र तत्र तिष्ठन्त्यसाधवः ॥ [2006,08,09, 10]

शब्दार्थ श्लोकस्तु = यश तो। लोकताम् याति = कीर्ति की प्राप्ति करता है। यत्र = जहाँ। तिष्ठन्ति = रहते हैं। साधवः = सज्जन पुरुष लकारो लुप्यते = श्लोक का 'ल' वर्ण लुप्त हो जाता है अर्थात् श्लोक 'शोक' बन जाता है। तत्र = वहाँ। असाधवः = दुर्जन पुरुष।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में सज्जनों और दुर्जनों की संगति का प्रभाव दर्शाया गया है।

अन्वय यत्र साधवः तिष्ठन्ति, श्लोकः तु श्लोकताम् याति। यत्र असाधवः तिष्ठन्ति, तत्र लकारो लुप्यते (अर्थात् श्लोकः शोकतां याति)।

व्याख्या जहाँ सज्जन रहते हैं, वहाँ श्लोक (संस्कृत का छन्द) कीर्ति की प्राप्ति करता है। जहाँ दुर्जन रहते हैं, वहाँ श्लोक का 'लु' लुप्त हो जाता है अर्थात् श्लोक 'शोक' की प्राप्ति कराता है। तात्पर्य यह है कि अच्छी बातों, उपदेशों या सूक्तियों का प्रभाव सज्जनों पर ही पड़ता है; दुष्टों पर तो उसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह भी कहा जा सकता है कि सज्जनों की उपस्थिति वातावरण को आनन्दयुक्त कर देती है और दुर्जनों की उपस्थिति दुःखपूर्ण बना देती है।

(5)
अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
प्राप्नुयाद् बुद्ध्यवज्ञानमपमानञ्च-शाश्वतम् ॥ [2011]

शब्दार्थ अप्राप्तकालम् = समय के प्रतिकूल वचन = बात। बृहस्पतिः = देवताओं के गुरु बृहस्पति अर्थात् अत्यधिक ज्ञानवान् व्यक्ति। अपि = भी। बुवन् = बोलता हुआ। प्राप्नुयात् = प्राप्त करता है। बुद्ध्यवज्ञानम् = बुद्धि की उपेक्षा; बुद्धि की अवमानना। शाश्वतम् = निरन्तर।।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में समय के प्रतिकूल बात न कहने की शिक्षा दी गयी है।

अन्वय अप्राप्तकालं वचनं ब्रुवन् बृहस्पतिः अपि बुद्ध्यवज्ञानं शाश्वतम् अपमानं च प्राप्नुयात्।

व्याख्या समय के विपरीत बात को कहते हुए देवताओं के गुरु बृहस्पति भी बुद्धि की अवज्ञा और सदा रहने वाले अपमान को प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को समय के अनुकूल बात ही करनी चाहिए।

(6)
वाच्यं श्रद्धासमेतस्य पृच्छतश्च विशेषतः
प्रोक्तं श्रद्धाविहीनस्याप्यरण्यरुदितोपमम् ॥

शब्दार्थ वाच्यम् = कहने योग्य। श्रद्धासमेतस्य = श्रद्धा से युक्त का। पृच्छतः पूछने वाले का। प्रोक्तं = कहा हुआ। श्रद्धाविहीनस्य = श्रद्धारहित के लिए। अरण्य-रुदितोपमम् = अरण्यरोदन के समान निरर्थक है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में श्रद्धा के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

अन्वये श्रद्धासमेतस्य विशेषतः पृच्छतः च वाच्यम्। श्रद्धाविहीनस्य प्रोक्तम् अपि अरण्यरुदितोपमम् (अस्ति)।

व्याख्या श्रद्धा से युक्त अर्थात् श्रद्धालु व्यक्ति की और विशेष रूप से पूछने वाले की बात कहने योग्य होती है। श्रद्धा से रहित अर्थात् अश्रद्धालु व्यक्ति का कहा हुआ भी अरण्यरोदन अर्थात् जंगल में रोने के समान निरर्थक है। तात्पर्य यह है कि ऐसे ही व्यक्ति या शिष्य को ज्ञान देना चाहिए, जो श्रद्धालु होने के साथ-साथ जिज्ञासु भी हो।

(7)
वसुमतीपतिना नु सरस्वती, बलवता रिपुणा न च नीयते
समविभागहरैर्न विभज्यते, विबुधबोधबुधैरपि सेव्यते ॥ [2006, 10]

शब्दार्थ वसुमतीपतिना = राजा के द्वारा| सरस्वती = विद्या| बलवता रिपुणी = बलवान् शत्रु के द्वारा न नीयते = नहीं ले जायी जाती है। समविभागहरैः = समान हिस्सा लेने वाले भाई-बहनों के द्वारा। न विभज्यते = नहीं विभक्त की जाती है। विबुधबोधबुधैः = ऊँचे से ऊँचे विद्वानों के द्वारा। सेव्यते = सेवित होती है।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में विद्या को अमूल्य धन बताया गया है।

अन्वय सरस्वती वसुमतीपतिना बलवता रिपुणा च न नीयते। समविभागहरैः न विभज्यते, विबुधबोधबुधैः अपि सेव्यते।।

व्याख्या विद्या राजा के द्वारा और बलवान् शत्रु के द्वारा (हरण करके) नहीं ले जायी जाती है। यह समान हिस्सा लेने वाले भाइयों के द्वारा भी बाँटी नहीं जाती है तथा देवताओं के ज्ञान के समान ज्ञान वाले विद्वानों के द्वारा भी सेवित होती है। तात्पर्य यह है कि विद्या को न तो राजा ले सकता है और न ही बलवान् शत्रु। इसे भाई-बन्धु भी नहीं बाँटते अपितु यह तो ज्ञानी-विद्वानों द्वारा भी सेवित है।

(8)
लक्ष्मीनं या याचकदुः खहारिणी, विद्या नयाऽप्यच्युतभक्तिकारिणी।
पुत्रो न यः पण्डितमण्डलाग्रणीः, सा नैव सा नैव स नैव नैव ॥ [2012]

शब्दार्थ या = जो लक्ष्मी। याचकदुःखहारिणी = याचकों के दुःख को दूर करने वाली। अच्युतभक्तिकारिणी = विष्णु की भक्ति उत्पन्न करने वाली। पण्डितमण्डलाग्रणीः = पण्डितों के समूह में आगे रहने वाला, श्रेष्ठ। सानैव = वह नहीं है।

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में वास्तविक लक्ष्मी, विद्या तथा पुत्र के विषय में बताया गया है।

अन्वय या लक्ष्मीः याचकदु:खहारिणी न (अस्ति) सा (लक्ष्मीः) नैव (अस्ति)। या विद्या अपि अच्युतभक्तिकारिणी न (अस्ति) सा (विद्या) नैव (अस्ति)। यः पुत्रः पण्डितमण्डलाग्रणी: न (अस्ति) सः (पुत्र) एव न (अस्ति), नैव (अस्ति)।

व्याख्या जो लक्ष्मी याचकों अर्थात् माँगने वालों के दु:खों को दूर करने वाली नहीं है, वह लक्ष्मी ही नहीं है, जो विद्या भी भगवान् विष्णु में भक्ति उत्पन्न करने वाली नहीं है, वह विद्या ही नहीं है, जो पुत्र पण्डितों के समूह में आगे रहने वाला (श्रेष्ठ) नहीं है; वह पुत्र ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि वास्तविक धन वही है, जो परोपकार में प्रयुक्त होता है; विद्या वही है, जिससे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त होता है और पुत्र वही है जो विद्वान् होता है।

(9)
केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्द्धजाः ॥ [2012]

https://www.evidyarthi.in/

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ [2009]

शब्दार्थ केयूराः = बाजूबन्द (भुजाओं में पहना जाने वाला सोने का आभूषण)। हाराः = हार। विभूषयन्ति = सजाते हैं। चन्द्रोज्ज्वलाः = चन्द्रमा के समान उज्ज्वला विलेपनम् = शरीर में किया जाने वाला चन्दन आदि का लेप। कुसुमं = फूल। अलङ्कृताः = सजे हुए। मूर्द्धजाः = बाल। वाण्येका (वाणि + एका) = एकमात्र वाणी। समलङ्करोति = सजाती है। संस्कृती = संस्कार की गयी, भली-भाँति अध्ययन आदि के द्वारा शुद्ध की गयी। धार्यते = धारण की जाती है। क्षीयन्ते = नष्ट हो जाते हैं। खलु = निश्चित ही। भूषणानि = समस्त आभूषण। सततं = सदा| वाग्भूषणम् = वाणीरूपी आभूषण। भूषणं = आभूषण।।

प्रसंग प्रस्तुत श्लोक में संस्कारयुक्त वाणी का महत्त्व बताया गया है।

अन्वय केयूराः पुरुषं न विभूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वला: हाराः न (विभूषयन्ति)। न स्नानं, न विलेपनं, न कुसुमं, न अलङ्कृताः मूर्द्धजाः पुरुषं (विभूषयन्ति)। एकावाणी, या संस्कृता धार्यते, पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते। वाग्भूषणं (वास्तविकं) सततं भूषणम् (अस्ति)।

व्याख्या पुरुष को सुवर्ण के बने बाजूबन्द सुशोभित नहीं करते हैं। चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार शोभित नहीं करते हैं। स्नान, चन्दनादि का लेप, फूल, सुसज्जित बाल पुरुष को शोभित नहीं करते हैं। एकमात्र वाणी, जो अध्ययनादि द्वारा संस्कार करके धारण की गयी है, पुरुष को सुशोभित करती है। अन्य आभूषण तो निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। वाणीरूपी आभूषण ही सदा आभूषण है। तात्पर्य यह है कि वाणी-रूपी आभूषण ही सच्चा आभूषण है, जो कभी नष्ट नहीं होता।

सूक्तिपरक वाक्यांशों की व्याख्या

(1) भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती। [2011]

सन्दर्भ प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति हमारी पाठ्य-पुस्तक 'संस्कृत' के पद्य-खण्ड 'पद्य-पीयूषम्' के . 'सूक्ति-सुधा' नामक पाठ से उद्धृत है।

[संकेत इस पाठ की शेष सभी सूक्तियों के लिए यही सन्दर्भ प्रयुक्त होगा।**]**

प्रसंग इस सूक्ति में संस्कृत भाषा के महत्त्व को बताया गया है।

अर्थ सभी भाषाओं में संस्कृत सबसे प्रमुख, मधुर और अलौकिक है।

व्याख्या विश्व की समस्त भाषाओं में संस्कृत भाषा को 'गीर्वाणवाणी' अर्थात् देवताओं की भाषा बताया गया है। यह भाषा शब्द-रचना की दृष्टि से दिव्य, भाषाओं की दृष्टि से मधुर तथा विश्व की भाषाओं में प्रमुख है। इस भाषा में उत्तम काव्य, सरस नाटक और चम्पू पाये जाते हैं। इस भाषा में धर्म, दर्शन, इतिहास, चिकित्सा आदि सभी विषयों पर प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। इतनी सम्पूर्ण भाषा विश्व में कोई और नहीं है।

(2) भाषासु काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्। [2005]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सुभाषित के महत्त्व को बताया गया है।

अर्थ (संस्कृत) भाषा में काव्य मधुर है तथा उससे भी अधिक सुभाषित।

व्याख्या भाषाओं में संस्कृत भाषा सबसे दिव्य, मुख्य और मधुर है। इससे भी अधिक मधुर इस भाषा के काव्य हैं और काव्यों से भी अधिक मधुर हैं इस भाषा के सुभाषित। सुभाषित से आशय ऐसी उक्ति या कथन से होता है जो बहुत ही अच्छी हो। इसे सूक्ति भी कहते हैं। सूक्तियाँ प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में प्रत्येक मनुष्य के लिए समान रूप से उपयोगी होती हैं। जिस प्रकार सुन्दर वचन बोलने से वक्ता और श्रोता दोनों का ही हित होता है, उसी प्रकार काव्यों में निहित सूक्तियाँ आनन्ददायिनी होने के साथ-साथ जीवन में नैतिकता का समावेश कराती हैं तथा अमृत-तत्त्व की प्राप्ति में प्रेरणा प्रदान करती हैं। यही कारण है कि (संस्कृत) भाषा में सूक्ति को सर्वोपरि मान्यता प्रदान की गयी है।

(3)
पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्। [2006,07, 08, 11, 12, 14]
मूढः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञाविधीयते ॥ [2007,08, 11, 15]

प्रसंग इन सूक्तियों में जल, अन्न और अच्छे वचनों को ही सर्वोत्कृष्ट रत्न की संज्ञा प्रदान की गयी है।

अर्थ पृथ्वी पर जल, अन्न और सुभाषित ये तीन रत्न हैं। मूर्ख व्यक्ति ही पत्थरों को रत्न मानते हैं।

व्याख्या मानव ही नहीं पशु-पक्षी भी अन्न-जल और सुन्दरवाणी के महत्त्व को भली प्रकार पहचानते हैं। अन्न से भूख शान्त होती है, जल से प्यास बुझती है और सुन्दर वचनों से मन को सन्तोष मिलता है। बिना अन्न और जल के तो जीवधारियों का जीवित रहना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव ही है। इसीलिए इन्हें सच्चे रत्न कहा गया है। सांसारिक मनुष्य अपनी अल्पज्ञता के कारण सभी प्रकार से धन-संग्रह की प्रवृत्ति में लगा रहता है। वह हीरे, रत्न, जवाहरात, मणियों का संचय करके धनी एवं वैभवशाली बनना चाहता है। वह इन्हें ही अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण मानता है, परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। ये तो पत्थर के टुकड़े मात्र हैं। वास्तव में जल, अन्न और सुवाणी (अच्छे वचन) ही सच्चे रत्न हैं।

(4) काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। [2006,07,08, 09, 10, 11, 14, 15]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सज्जनों के समय व्यतीत करने के विषय में बताया गया है।

अर्थ बुद्धिमानों का समय काव्य-शास्त्र के पठन-पाठन में ही बीत जाता है।

व्याख्या विद्वान् और सज्जन अपने समय को शास्त्रों और काव्यों का अध्ययन करने में लगाते हैं। वे यदि अपना मनोरंजन भी करते हैं तो इसी प्रकार के अच्छे कार्यों से करते हैं और सदैव लोकोपकार की बात सोचते हैं, क्योंकि वे समय के महत्त्व को जानते हैं। वे समझते हैं कि "आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिकैः । सचेन्निरर्थकं नीतः का नु हानिस्ततोऽधिकाः ।।"; अर्थात् आयुष्य का एक भी क्षण सोने की करोड़ों मुद्राओं के द्वारा नहीं खरीदा जा सकता। यदि इसे व्यर्थ बिता दिया गया तो इससे बड़ी हानि और क्या हो सकती है? इसीलिए वे अपना समय काव्य-शास्त्रों के अध्ययन में व्यतीत करते हैं क्योंकि आत्म-उद्धार के लिए भी ज्ञान परम आवश्यक है।

(5) व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रयाकलहेन वा। [2010]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में मूर्ख लोगों के समय व्यतीत करने के विषय में बताया गया है।

अर्थ मूख का समय बुरी आदतों, निद्रा व झगड़ने में व्यतीत होता है।

https://www.evidyarthi.in/

व्याख्या मूर्ख लोग अपना समय सदैव ही व्यर्थ के कार्यों में बिताते हैं। समय बिताने के लिए वे जुआ, शराब आदि के व्यसन करते हैं और स्वयं को नरक में धकेलते हैं। कुछ लोग अपना समय सोकर बिता देते हैं। और कुछ लड़ाई-झगड़े में अपना समय लगाकर दूसरों को पीड़ा पहुँचाते हैं। इनके किसी भी कार्य से किसी को कोई लाभ अथवा सुख नहीं मिलता है; क्योंकि परोपकार करना इनको आता ही नहीं है। इन्हें तो दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में ही सुख की प्राप्ति होती है।

(6), श्लोकस्तु श्लोकतां याति यत्र तिष्ठन्ति साधवः। [2012]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सज्जनों की उपस्थिति का महत्त्व समझाया गया है।

अर्थ जहाँ सज्जन निवास करते हैं, वहाँ श्लोक तो यश को प्राप्त करता है।

व्याख्या सज्जन अच्छी और सुन्दर बातों को बढ़ावा देकर उनके संवर्द्धन में अपना योगदान देते हैं। इसीलिए सज्जनों के मध्य विकसित श्लोक; अर्थात् संस्कृत कविता का छन्द; कवि की कीर्ति या यश को चतुर्दिक फैलाता है। आशय यह है कि कविता सज्जनों के मध्य ही आनन्ददायक होती है तथा कवि को यश व कीर्ति प्रदान करती है। दुर्जनों के मध्य तो यह विवाद उत्पन्न कराती है तथा शोक (दुःख) का कारण बनती है।

(2) वसुमतीपतिना नु सरस्वती।। [2011]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में विद्या के विषय में वर्णन किया गया है।

अर्थ राजा के द्वारा भी विद्या (नहीं छीनी जा सकती है)।

व्याख्या विद्या न तो राजा के द्वारा अथवा न ही किसी बलवान् शत्रु के द्वारा बलपूर्वक छीनी जी सकती है। यह विद्यारूपी धन किसी के द्वारा बाँटा भी नहीं जा सकता, अपितु यह तो जितनी भी बाँटी जाए, उसमें उतनी ही वृद्धि होती है। यह धन तो बाँटे जाने पर बढ़ता ही रहता है। प्रस्तुत सूक्ति विद्या की महत्ता को परिभाषित करती है।

(8) लक्ष्मीनं या याचकदुःखहारिणी। [2012]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में लक्ष्मी की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ जो याचक (माँगने वालों) के दु:खों को दूर करने वाली नहीं है, (वह) लक्ष्मी (नहीं है)।

व्याख्या किसी भी व्यक्ति के पास लक्ष्मी अर्थात् धन है तो उस लक्ष्मी की सार्थकता इसी में है कि वह उसके द्वारा याचकों अर्थात् माँगने वालों के दु:खों को दूर करे। आशय यह है कि धनसम्पन्न होने पर भी कोई व्यक्ति यदि किसी की सहायता करके उसके कष्टों को दूर नहीं करता है तो उसका धनसम्पन्न होना व्यर्थ ही है। व्यक्ति का धनी होना तभी सार्थक है जब वह याचक बनकर अपने पास आये लोगों को निराश न करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनकी सहायता करे। कविवर रहीम ने सामर्थ्यवान् लेकिन याचक की मदद न करने वाले लोगों को मृतक के समान बताया है रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाय। उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाय ॥

(9) विद्या न याऽप्यच्युतभक्तिकारिणी।। [2008, 1]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में विद्या की सार्थकता पर प्रकाश डाला गया है।

अर्थ जो विद्या भगवान विष्णु की भक्ति में प्रवृत्त करने वाली नहीं है, (वह विद्या नहीं है)।

व्याख्या वही विद्या सार्थक है, जो व्यक्ति को भगवान विष्णु अर्थात् ईश्वर की भक्ति में प्रवृत्त करती है। जो विद्या व्यक्ति को ईश्वर की भक्ति से विरत करती है, वह किसी भी प्रकार से विद्या कहलाने की अधिकारिणी ही नहीं है। विद्या वही है, जो व्यक्ति को जीवन और मरण के बन्धन से मुक्त करके मोक्ष-पद प्रदान करे। मोक्ष-पद को भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति को भक्ति में विद्या ही अनुरक्त कर सकती है। इसीलिए विद्या को प्रदान करने वाले गुरु को कबीरदास जी ने ईश्वर से भी श्रेष्ठ बताया है गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय।। बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय॥

(10) पुत्रो न यः पण्डितमण्डलाग्रणीः। [2006,09]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सच्चे पुत्र की विशेषता बतायी गयी है।

अर्थ जो पुत्र विद्वानों की मण्डली में अग्रणी नहीं, वह पुत्र ही नहीं है।

व्याख्या सूक्तिकार का तात्पर्य यह है प्रत्येक व्यक्ति पुत्र की कामना इसीलिए करता है कि वह उसके कुल के नाम को चलाएगा; अर्थात् अपने सद्कर्मों से अपने कुल के यश में वृद्धि करेगा और यह कार्य महान् पुत्र ही कर सकता है। मूर्ख पुत्र के होने का कोई लाभ नहीं होता; क्योंकि उससे कुल के यश में वृद्धि नहीं होती। ऐसा पुत्र होने से तो नि:सन्तान रह जाना ही श्रेयस्कर है। वस्तुतः पुत्र कहलाने का अधिकारी वही है, जो विद्वानों की सभा में अपनी विद्वत्ता का लोहा मनवाकर अपने माता-पिता तथा कुल के सम्मान को बढ़ाता है।

(11) वाण्येको समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते [2006, 11]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में वाणी को ही वास्तविक आभूषण कहा गया है।

अर्थ मात्र वाणी ही, जो शुद्ध रूप से धारण की जाती है, मनुष्य को सुशोभित करती है।

व्याख्या संसार का प्रत्येक प्राणी सांसारिक प्रवृत्तियों में उलझा रहता है और उन्हीं प्रवृत्तियों में वह (भौतिक) सुख का अनुभव करता है। इसीलिए वह अपने आपको सजाकर रखना चाहता है और दूसरों के समक्ष स्वयं को आकर्षक सिद्ध करना चाहता है, अर्थात् आत्मा की अपेक्षा वह शरीर को अधिक महत्त्व देता है। वह विभिन्न आभूषणों को धारण करता है, परन्तु ऐसे आभूषण तो समय बीतने के साथ-साथ नष्ट हो जाते हैं। सच्चा आभूषण तो मधुर वाणी है, जो कभी भी नष्ट नहीं होती। मधुर वाणी मनुष्य का एक ऐसा गुण है। जिसके कारण उसकी शोभा तो बढ़ती ही है, साथ ही वह समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा को भी अर्जित करता है तथा इससे उसको आत्मिक आनन्द की भी अनुभूति होती है।

(12)
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं, वाग्भूषणं भूषणम् ॥ [2009, 12, 13]
वाग्भूषणं भूषणम्।। [2007,08,09, 10, 12]

प्रसंग प्रस्तुत सूक्ति में सुसंस्कारित वाणी को ही मनुष्य का एकमात्र आभूषण बताया गया है।

अर्थ सभी आभूषण धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं, सच्चा आभूषण वाणी ही है।

https://www.evidyarthi.in/

व्याख्या मनुष्य अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के आभूषणों और सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग करता है। ये आभूषण और सुगन्धित द्रव्य तो नष्ट हो जाने वाले हैं; अत: बहुत समय तक मनुष्य के सौन्दर्य को बढ़ाने में असमर्थ होते हैं। मनुष्य की संस्कारित मधुर वाणी सदा उसे आभूषित करने वाली है; क्योंकि वह सदा मनुष्य के साथ रहती है, वह कभी नष्ट नहीं होती। उसका प्रभाव तो मनुष्य के मरने के बाद भी बना रहता है। मनुष्य अपनी प्रभावशालिनी वाणी से ही दुष्टों और अपराधियों को भी बुराई से अच्छाई के मार्ग पर ले जाता है; अत: वाणी ही सच्चा आभूषण है।

श्लोक का संस्कृत-अर्थ

(1) भाषासु मुख्या .....
तस्मादपि सुभाषितम् ॥ (श्लोक 1) [2009, 10, 14, 15]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके संस्कृतभाषायाः महत्त्वं प्रतिपादयन् कविः कथयति-संस्कृतभाषा सर्वासु भाषासु श्रेष्ठतमा अस्ति। इयं भाषा अलौकिका मधुरगुणयुक्ता च अस्ति। तस्मात् हि तस्य काव्यं मधुरम् अस्ति। तस्मात् अपि रम्यं मधुरं च तस्य सुभाषितम् अस्ति। अस्मात् कारणात् इयं गीर्वाणभारती कथ्यते। |

(2) पृथिव्यां त्रीणि ..... रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ (श्लोक 2) [2006, 09, 14]

संस्कृतार्थः कविः कथयति-भूतले जलम् अन्नं सुभाषितं च इति त्रीणि रत्नानि सन्ति। मूर्खः पाषाणखण्डेषु रत्नस्य संज्ञा विधीयते। वस्तुत: जलम् अन्नं सुभाषितञ्च अखिलं विश्वं कल्याणार्थं भवन्ति।

(3) काव्यशास्त्रविनोदेन ..... निद्रया कलहेन वा ॥ (श्लोक 3) [2008, 10, 12, 13, 14, 15]

संस्कृतार्थः कवि मूर्खाणां बुद्धिमतां च समययापनस्य अन्तरं वर्णयति यत् बुद्धिमन्तः जनाः स्वसमयं काव्यशास्त्राणां पठनेन यापयन्ति, एतद् विपरीतं मूर्खाः जनाः स्वसमयं दुराचारेण, शयनेन, विवादेन वा यापयन्ति।

(4) श्लोकस्तु श्लोंकता ..... "यत्र तिष्ठन्त्यसाधवः॥ (श्लोक 4) [2006, 08, 15]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके कविः कथयति-यत्र सज्जनाः निवसन्ति, तत्र श्लोकः तु कीर्ति याति। यत्र दुर्जना: निवसन्ति, तत्र श्लोकस्य लकारः लुप्यते। एवं श्लोकः शोकं भवति। सदुपदेशैः सज्जना प्रभाविताः दुष्टाः न इति भावः।

(5) अप्राप्तकालं वचनं ..... अपमानञ्च शाश्वतम् ॥ (श्लोक 5) [2009]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके कविः कथयति यत् बृहस्पतिः अपि असामयिकं वचनं ब्रुवन् बुद्धेः अधोगति शाश्वतम् अपमानञ्च प्राप्नोति। अतएव असामयिकं वचनं कदापि न ब्रूयात्।।

(6) वाच्यं श्रद्धासमेतस्य ..... रुदितोपमम् ॥ (श्लोक 6) [2011]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके कविः कथयति-श्रद्धायुक्तस्य पुरुषस्य पृच्छतः सन् विशेषरूपेण वक्तव्यम्। श्रद्धाहीनस्य पुरुषस्य पृच्छतः वचनम् अरण्ये रुदितम् इव भवति।

(7) वसुमतिपतिना नु ..... बुधैरपि सेव्यते ॥ (श्लोक 7) [2010]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके सरस्वत्याः विशेषता वर्णिता अस्ति। सरस्वती राज्ञा तथा बलवता रिपुणा न नेतुं शक्यते न च भ्रातृबन्धुभिः विभक्तुं शक्यते अपितु विद्वद्भिः सेव्यते।

(8) लक्ष्मीनं या ..... स नैव नैव॥ (श्लोक 8) [2007]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोके कविः कथयति-या लक्ष्मी याचक दुःखहारिणी न भवति, सा लक्ष्मीति कथितुं न शक्यते। या विद्या विष्णुभक्तिकारिणी न भवति सापि विद्या कथितुं न शक्यते। यः पुत्रः पण्डितमण्डलाग्रणीः न भवति सः पुत्रः कथितुं न शक्यते।।

(9)
केयूराः न विभूषयन्ति .....
वाग्भूषण भूषणं ॥ (श्लोक 9) [2002]
केयूराः न विभूषयन्ति ..... नालङ्कृता मूर्द्धजाः॥ [2005]

संस्कृतार्थः अस्मिनु श्लोके वाणीम् एव सर्वश्रेष्ठं भूषणं कथितम् अस्ति। कर्णाभूषणानि चन्द्रोपमः रमणीयः हारः स्नान-विलेपनादि पुष्पाणि विभूषिता मूर्द्धजा: पुरुषं न भूषयन्ति परन्तु संस्कृता वाणी एव (या अमृतोपमा मधुरावाणी) सा एव वास्तविकम् आभूषणम्। अन्यानि आभूषणानि कालक्रमेण क्षीयन्ते परन्तु वाग्भूषणं कदापि न क्षीयते।

(10) वाण्येका समलङ्करोति ..... वाग्भूषण भूषणम् ॥ (श्लोक 9) [2007]

संस्कृतार्थः अस्मिन् श्लोकाद्धे कविः कथयति–अस्मिन् संसारे एकावाणी, या अध्ययनेन विनयेन च संस्कृता धार्यते, सर्वोत्तमं भूषणं अस्ति। सा पुरुषं विभूषयन्ति। अन्यानि भूषणानि खलु नष्टाः भवन्ति। वाग्भूषणं वास्तविक भूषणम् अस्ति, यः कदापि न विनश्यति।।

https://www.evidyarthi.in/